बनास जन

साहित्य-संस्कृति का संचयन

शताब्दी स्मरण

फणीश्वरनाथ रेणु

बनास जन
जनवरी-मार्च 2021

अव्यावसायिक
अंक 41, वर्ष 13

परामर्श	प्रो. नवलकिशोर प्रो. काशीनाथ सिंह डॉ. के. सी. शर्मा डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल प्रो. माधव हाड़ा
संपादक :	पल्लव
सहयोग	गणपत तेली, भँवरलाल मीणा
आवरण-चित्र	निकिता त्रिपाठी, प्रयागराज
कला-पक्ष	मयंक शर्मा, उदयपुर
लेजरटाइप सेटिंग	सुभाष कश्यप, दिल्ली मो. : +91-9911163286

सहयोग राशि

200 रुपए (यह अंक)–डाक znr मँगवाने पर–230 रुपये
400 रुपये (संस्थागत)–डाक zm मँगवाने पर-430 रुपये
300 रुपये–वार्षिक सहयोग (व्यक्तिगत)
600 रुपये–वार्षिक सहयोग (संस्थागत)
5000 रुपये–आजीवन (व्यक्तिगत)
8000 रुपये–आजीवन (संस्थागत)

The Draft/Cheque may please be made in favour of 'Banaas Jan'
OurA/C Details: SBI CIA No.61159024776
IPSC Code: S8IN0032036
Branch name: State Bank of India, D L DA V Model School, BN Block Shalimar Bagh, New Delhi-II 0088

समस्त पत्र व्यवहार : पल्लव
393, डी.डी.ए., ब्लॉक सी एंड डी
कनिष्क अपार्टमेंट, शालीमार बाग, दिल्ली-110088
व्हाट्सअप : +91-8130072004 (केवल संदेश हेतु)
ई-मेल : banaasjan@gmaiI.com
वेबसाइट : www.notnuI.com

नोट : प्रकाशित रचनाओं से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं।
संपादन एवं सह संपादन पूर्णतः अवैतनिक।
समस्त कानूनी विवादों का न्याय क्षेत्र दिल्ली न्यायालय होगा।

स्वामी-संपादक-प्रकाशक मुद्रक पल्लव द्वारा 393, डी.डी.ए., ब्लॉक सी एंड डी, कनिष्क अपार्टमेंट, शालीमार बाग, दिल्ली-110088 से प्रकाशित और प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स, झिलमिल इंडस्ट्रीयल एरिया, जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-110095 से मुद्रित I

BANAAS JAN
A Collection of Literature
Language: Hindi

ISSN 2231–6558

अनुक्रम

अपनी बात		5
जीवन		
रेणु के जन्म की कथा	भारत यायावर	9
जो रे जमाना...	रामधारी सिंह दिवाकर	20
सामाजिक प्रतिबद्धता, प्रतिरोध और रेणु	संजय जायसवाल	29
उपन्यासकार रेणु		
मैला आँचल		
समुद समाना बूँद में सो कत हेरा जाए	रेणु व्यास	46
एक भूमिका, जो नहीं लिखी चाहिए थी और एक असंभव रूप की खोज	अवनीश मिश्र	62
जाति का सामाजिक यथार्थ और 'मैला आँचल'	अमिष वर्मा	75
सुराज उत्सव में अपनी ही बर्बादी का जश्न मनाते आदिवासी	प्रमोद मीणा	80
'मैला आँचल' के राजनीतिक संदर्भ	नवनीत आचार्य	91
मैला आँचल : लोकप्रियता का संदर्भ	विजय कुमार भारती	99
'मैला आँचल' का सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य	मुश्ताक अहमद	107
यथार्थवाद के परिप्रेक्ष्य में 'मैला आँचल'	अजय वर्मा	113
परती परिकथा		
शून्य से यथार्थ का सृजन करते रचनाकार	अमिय बिंदु	118
मनुष्य की मुक्ति और सामाजिक बदलाव की महागाथा	दुर्गा प्रसाद सिंह	123
लोकजीवन का वैविध्य और यथार्थ की आकृतियाँ	राम विनय शर्मा	137
परती : परिकथा : महत्त्व विवाद	नवल किशोर	145
जुलूस		
उपमहाद्वीप की आजादी से उत्पन्न स्वप्नों का 'जुलूस'	श्रुति कुमुद	149
देश की विडंबनाओं का 'जुलूस'	धनंजय कुमार साव	153
कितने चौराहे		
[illegible]	नीलाभ कुमार	160
दीर्घतपा		
'दीर्घतपा' : 'कलंक मुक्ति' का विभ्रम या यथार्थ?	[illegible] कुमार द्विवेदी	165
पल्टू बाबू रोड		
पल्टू बाबू रोड : बंगाली प्रभुत्व के पराभव का आख्यान	मृत्युंजय प्रभाकर	172

कथाकार रेणु

रेणु साहित्य में बजते वाद्य-यंत्र	रवि भूषण	181
रेणु की कहानियाँ और जीवन रस	जीवन सिंह	190
रेणु : वक्त की आहट पर कान	रेखा कस्तवार	200
रेणु : अपनी कहानियों में स्वयं को ढूँढ़ना	शंभु गुप्त	216
रेणु की कहानियों का उत्तरकाल और स्त्री-सत्ता	अरविन्द कुमार	231
रेणु की भाषा : 'मलमल के कुरते पे छींट लाल-लाल'	अनामिका	242
कथा गायक रेणु की कहानियाँ	बिमलेन्दु तीर्थंकर	249
रेणु की आरंभिक कहानियाँ और ठुमरी	मानवेन्द्र प्रताप सिंह	254

कुछ कहानियाँ

'रसप्रिया' : आत्म-निर्वासन की दस्तावेजी कहानी	जीतेन्द्र गुप्ता	261
स्मृति यात्रा : एक आदिम रात्रि की महक	ममता कंवर बारहठ	267
लाल पान की बेगम : व्यंग्य से विशेषण तक	रजनी कुमारी पांडेय	272
संझा-तारा डूब रहा है	शिरीष कुमार मौर्य	276
एक आदिम रात्रि की महक : जीवन में नई अर्थवत्ता की खोज	शिवदयाल	281

विशेष : तीसरी कसम

तीसरी कसम : समय की शिला पर अमिट निशान	नलिन विकास	286
...प्यार भी सब कुछ नहीं होता	स्मृति सुमन	297
ज्यादतियाँ हर बार कहाँ दिख पाती हैं!	साहिल कैरो	302

कथेतर

रेणु के कथेतर गद्य के सरोकार : संदर्भ रिपोर्ताज	अरुण होता	306
मुसीबतों से घिरे आदमी की खोज का रिपोर्ताज	अनुपम कुमार	314
समय की शिला पर संवेदना और शिल्प का अंकन	मीता शर्मा	318
वन-तुलसी की गंध : मन-मस्तिष्क पर छाई छवियाँ	प्रियंका कुमारी	324

सिने प्रसंग

पंचलाइट–रेणु से दर्शकों तक	राकेश कुमार त्रिपाठी	330

कवि रेणु

कविता की जमीन पर फणीश्वरनाथ रेणु	अनिल राय	337
अहिंसा लाउंड्री में कपड़े धुलाता हूँ	शशिकला राय	346

और अंत में

रेणु को पढ़ते हुए	रचना सिंह	352
स्वातंत्र्योत्तर भारत में नवनिर्माण का प्रश्न और रेणु	पीयूष राज	355
फणीश्वरनाथ रेणु : परिचय		361

कविता की ज़मीन पर फणीश्वरनाथ रेणु

हिंदी के महान लेखक फणीश्वरनाथ रेणु की साहित्यिक यात्रा उनकी सघन जिजीविषा और अथक संघर्ष-यात्रा का प्रतिरूप है I एक श्रेष्ठ कथाकार एवं उपन्यासकार के रूप में तो रेणु को सारा संसार जानता है किंतु वे एक श्रेष्ठ कवि भी थे इसकी चर्चा बहुत कम होती है। रेणु को साहित्यिक, सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना के संस्कार पिता से विरासत के रूप में मिले थे I 1950 की नेपाल-क्रांति और 1974 के जयप्रकाश-आंदोलन, दोनों में रेणु की सक्रिय सहभागिता रही I यही कारण है कि समाज और राजनीति उनके कवित्व के केंद्र में है I पिता कांग्रेस के सक्रिय सदस्य थे I उस समय की लगभग सभी प्रमुख साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ–सरस्वती, सुधा, माधुरी, विशाल भारत आदि उनके पिता zm घर में नियमित रूप से मँगवाई जाती थीं। कई अन्य महान कवियों की तरह रेणु ने भी बचपन में अपनी साहित्यिक सृजनशीलता की शुरुआत तुकबंदियों से की I स्कूली जीवन के दौरान साहित्यिक गतिविधियों में सक्रिय होने के कारण वे प्रायः कक्षा में अनुपस्थित रहते थे 1एक बार शिक्षक ने उनसे कक्षा में उनकी अनुपस्थिति का कारण पूछा I इसके जवाब में रेणु ने जो कहा वह कुछ इस प्रकार की तुकबंदी में था–'वाटर रेनिंग झमाझम झम/पैर फिसल गया, गिर गए हम/देयरफोर सर! आइ कुड नॉट कम!'[1] बचपन में शुरू की गई तुकबंदी की परिधि को पार करता हुआ रेणु का कवि निरंतर प्रौढ़ होता गया और भविष्य में उसने अनेक सशक्त कविताओं की रचना की I

फणीश्वरनाथ रेणु का काव्य-सृजन 1945 से 1975 के मध्य लगभग तीस वर्षों का है 1 कथा-साहित्य के मुकाबले उनके काव्य-सृजन का संसार भले ही काफी छोटा और कम ख्यातिप्राप्त हो, किंतु संवेदना के विविध रूपरंगों से वह बहुत समृद्ध है। नागार्जुन और त्रिलोचन रेणु के प्रिय कवि थे। रेणु स्वयं को कवि नहीं मानते थे। अपने कवि न हो पाने की कसक का भी उन्होंने एक स्थान पर ज़िक्र किया है। नागार्जुन की तरह ही वे भी कविता को जीने में यक़ीन रखते थे। उन्होंने कुछ कविताएँ, पराधीन भारत में लिखीं तो अधिकांश स्वातंत्र्योत्तर भारत में I उनका समूचा साहित्य भारत के पिछड़े गाँवों की जमीन पर रूपायित हुआ है I रेणु के साहित्य में उनका अनुभूत ग्रामीण जीवन अपने विशिष्ट रूप, रंग, स्वाद, गंध आदि के साथ बड़ी ही जीवंतता के साथ मौजूद है I गँवई जीवन के प्रति अदम्य लगाव उनमें बाबा नागार्जुन जैसा ही दिखाई पड़ता है I उन्हीं के शब्दों में–"मेरा जन्म एक छोटे से गाँव में हुआ।–पला-बढ़ा गाँव में, लिखा भी गाँवों पर। भारत की आत्मा जो गाँवों में निवास करती है, उसी का लेखक हूँ 1यहाँ, भोगने के लिए हूँ मानसिक पीड़ा और आनंद।"[2] गाँव की मिट्टी, वहाँ की प्रकृति, वहाँ के तीज-त्योहार से वे अविच्छिन्न रूप से बँधे हुए थे 1कथा-साहित्य की तरह ही आँचलिक परिवेश की सुंदरता, सहजता और सजीवता का पूरा रंग रेणु के काव्य-जगत पर भी चढ़ा हुआ है I मिथक, लोकविश्वास, लोकसंगीत, इत्यादि ने उनकी रचनाओं में एक अद्‌भुत जीवंतता पैदा की है।

रेणु की आरंभिक दौर की एक महत्त्वपूर्ण कविता 'होली' है जिसकी रचना उन्होंने 1945 में की थी I होली उनका प्रिय त्योहार है 1इसके प्रति उनका विशेष आकर्षण 'धमार फगुआ' और 'यह फागुनी हवा' आदि कविताओं में भी साफ झलकता है। रेणु जब 'होली' नामक कविता लिखते हैं तो

अनिल राय : श्यामलाल कॉलेज में अध्यापन एवं लेखन।
75, शुभम् अपार्टमेंट्स, 37, आई-पी-एक्स्टेंशन दिल्ली, 110092
मो. : 91-9810379859 ईमेल ; raidrani114@gmail.com

जाहिर है उस समय देश पराधीन है। पराधीनता की पीड़ा से यह कविता भी अछूती नहीं है। पराधीन भारत में लिखी गईं लगभग सभी श्रेष्ठ कविताओं में एक खास तरह की छटपटाहट और संघर्षजन्य तनाव दिखाई देता है। इसके बावजूद 'होली' कविता में त्योहार को मनाने के पारंपरिक हर्ष, उल्लास और जीवंतता की पूरी मौजूदगी है। तमाम तरह के संघर्षों से घिरेजीवन में मौज-मस्ती के पल अत्यंत दुर्लभ होते हैं, जिन्हें मनुष्य प्राप्त नहीं कर पाता है। कवि को वही अप्राप्य सुधा आज होली के बरक्स मिल गई है–

साजन होली आई है!
सुख से हँसना जी भर गाना-/मस्ती से मन को बहलाना
पर्व हो गया आज-/साजन होली आई है! /हँसाने हमको आई है!
इसी बहाने/क्षण भर गा लें/दुःखमय जीवन को बहला लें,
ले मस्ती की आग-/साजन होली आई है! /जलाने जग को आई है!

रेणु ने जनवरी 1946 में एक कविता लिखी थी 'नूतन वर्षाभिनंदन'। इसमें कवि द्वारा साम्राज्यवादी शोषण से कराहती जनता में एक नई स्फूर्ति और चेतना भरने की पूरी कवायद की गई है। यह कविता अपने ताने-बाने के कारण 1931 में लिखी निराला की 'वर दे! वीणावादिनि" की याद दिला देती है। भारत में स्वतंत्रता के नए मंत्र को दसों दिशाओं में परिव्याप्त करने की वही छटपटाहट यहाँ रेणु में भी दिखाई पड़ती है। निराला जहाँ माँ शारदा से याचना करते हैं कि–"काट अंध-उर के बंधन-स्तर,/बहा जननि ज्योतिर्मय निर्झर,/कलुष भेद तम हर प्रकाश भर/जगमग जग कर दे!, तो रेणु भी यही चाहते हैं कि नए वर्ष के साथ सुप्त भारतीयों के जीवन में एक नई ज्योति फैल जाए–

नव स्फूर्ति भरदे नवचेतन/टूट पड़ें जनता के बंधन
शुद्ध, स्वतंत्र वायुमंडल में/निर्मल तन, निर्भय मन हो!
प्रेम-पुलकमय जन-जन हो/नूतन का अभिनंदन हो!

रेणु का समय प्रेमचंद और निराला के बाद का है। तब तक हिंदी कविता पर प्रयोगवादी एवं नए कवियों का रंग काफी चढ़ चुका था। कविता में नए-नए प्रयोगों की आजमाइश बदस्तूर ज़ारी थी। साहित्य की वर्तमान um और उसकी लीक पर चलना अपेक्षाकृत सरल था, किंतु रेणु ने उससे अलग राह चुनी। कविता मेंनए प्रयोगों की जगह गाँव के किसान-मजदूरों की दुर्दशा उन्हें अधिक बेचैन कर रही थी। प्रेमचंद एवं निराला की तरह रेणु की दृष्टि में भी गैरबराबरी, गरीबी, भुखमरी और अशिक्षा जैसी विषमताओं से टकराना साहित्य के लिए अधिक जरूरी था। उन्हें बस एक ही आस थी कि स्वतंत्रता का सूरज ही देशवासियों को इसगहन दुःख से मुक्ति दिला सकता है और उनमें नवजीवन का संचार अब स्वतंत्रता-प्राप्ति के साथ ही हो सकता है। वंचित और अभावग्रस्त जनता भी सुराज के आस में ही बैठी थी। एक लंबे इंतज़ार के बाद वह समय भी आया और देश स्वाधीन हुआ। अब रेणु को जनता का कर्मपथ स्वतंत्रता के सूर्य से आलोकित होता दिखाई पड़ा। देश के स्वर्णिम भविष्य की कल्पना से प्रफुल्लित होकर उन्होंने 'मुझे तुम मिले' कविता लिखी, जिसमें भारतीय नभ में उदित हो रहे स्वतंत्रता के सूर्य का इस प्रकार वर्णन किया गया है–

रहा सूर्य स्वतंत्र का हो उदय! /हुआ कर्मपथ पूर्ण आलोकमय!
युगों कें घुले आज बंधन खुले/मुझे तुम मिले!

एक लंबी लड़ाई और बड़ी कीमत चुकाने के बाद देश स्वाधीन हुआ। अबसर्वत्र एक नई आशा थी, एक नया उमंग था। किंतु नवतंत्र के प्रति यह उत्साह अधिक समय तक नहीं ठहर सका। धीरे-धीरे इस झूठी अज़ादी से रेणु का मोहभंग होने लगा। 1949 में उन्होंने 'ओ लाल आफ़ताब!' शीर्षक एक गद्य-गीत लिखा जो 'नई दिशा' के शहीद विशेषांक में छपा था। देश को मिली अधूरी आज़ादी से व्यथित

होकर उन्हें यहाँ लिखना पड़ा—"यह कैसा स्वप्नभंग है? यह कैसी छलना है? कलाइयों और पैरों में बेडियाँ मौजूद हैं। अपने अंग-अंग पर बंधनों को देखकर हम कैसे विश्वास कर लें कि हम स्वतंत्र हैं। सुराज हुआ है जरूर, लेकिन वह हमारे लिए नहीं हुआ है I वह सुराज हुआ है बिड़लाओं के लिए, टाटाओं के लिए I यह जनता का सुराज नहीं है I महाभारत छिड़ा हुआ है I दरिद्रता, भूख और रोगों से मरने वाले एक-एक प्राणी को आज हम 'शहीद' कहते हैं I क्योंकि दुश्मनों के इन शस्त्रों से जूझने वाले, मरने वाले वीरों को हम वर्ग-संघर्ष में लड़ने वाला सिपाही समझते हैं I इस भ्रष्टाचार के आलम में घुलघुलकर मरने से अच्छा है एक बार कुछ करना या करते-करते मर जाना I" मुख्य um से विलगे लोगों की पीड़ा और आकांक्षा को रेणु न केवल समझते थे बल्कि उसे स्वर देना अपना पहला कर्तव्य समझते थे। उनमें साधारण जन के अधिकारों की लड़ाई लड़ने की एक सनक और बेचैनी मौजूद है I 'खड्गहस्त! कविता में वे वंचित-उपेक्षित वर्ग के लिए सामाजिक सम्मान के साथ रोटी का अधिकार माँगते दिखाई पड़ते हैं I रेणु यहाँ समाज के उस वर्ग की लड़ाई स्वयं लड़ते देखे जा सकते हैं जो सदियों से अपने पेट की आग को पानी से बुझाता रहा है और हद तो यह है कि इसके बाद भी समाज उससे संयम की अपेक्षा करता है I सुनियोजित व्यवस्था के तहत हाशिए पर धकेले गए इस वर्ग में वे अपने अधिकार माँगने का हौसला जगाते हैं I रेणु की माँग है कि वंचितों-शोषितों को अब सहानुभूति की जगह उनका अधिकार चाहिए I देश की शोषक व्यवस्था को खुली चुनौती देने वाली उनकी यह कविता अपनी प्रगतिशीलता में नायाब है—

> दे दो हमें अन्न मुट्ठी भर, औ थोड़ा सा प्यार!
> भीख नहीं हम माँग रहे हैं, अब अपना अधिकार!
> श्रमबल और दिमाग खपावें/तुम भोगो हम भिक्षा पावें,
> जाति-धर्म-धन के पचड़े में/प्यार नहीं हम करने पावें
> मुँह की रोटी मन की रानी, छीन बने सरदार!
> दे दो हमें अन्न मुट्ठी भर, औ थोड़ा सा प्यार!

श्रमिक-जीवन के प्रति गहरी संवेदना की एक और कविता है 'मालिक! आज माफ करो!', जो 1979 में सारिका के 'रेणु-स्मृति अंक' में छपी थी। कविता के पूर्वार्द्ध में ग्रामीण प्रकृति के सहज एवं जीवंत चित्र अंकित हैं I उत्तरार्द्ध में श्रमिक वर्ग के जीवन, उनकी छोटी-छोटी इच्छाएँ, और उन्हें पूर्ण करने के उनके उत्कट संकल्प आदि की अत्यंत सुंदर अभिव्यक्ति है। वैसे भी ग्रामीण-आंचलिक जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म यथार्थ-अंकन में रेणु का कोई सानी नहीं है I समाज का अभिजात्य-पूँजीपति-वर्ग अपने मन में विलासित1की बड़ी से बड़ी साध पालता है और उसे पूरा करने के लिए अनेक प्रकार के उचित-अनुचित कदम भी उठाता है I इसके विपरीत मजदूरों-श्रमिकों की इच्छाएँ उन्हीं की तरह सरल और छोटी होती हैं। अपनी छोटी से छोटी इच्छा को पूर्ण करके जो सुख इन्हें प्राप्त होता है वह अदम्य लिप्सा में डूबे उच्च वर्ग के लिए सर्वथा दुर्लभ है—

> आज कोई काम नहीं होगा।
> मालिक! आज माफ करो ----
> घरवाली का पैर भारी/मछली खाने को जी हुआ है I
> बाबा रामचंद्र भगवान थे/हम दास हैं, सेवक हैं,
> हमारी स्त्रियाँ सोने के हिरण की खाल खिंचवाकर/नहीं मँगवाएँगी 1

राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार देश के लिए कोई नई बात नहीं है I देश को आजाद हुए अभी पाँच वर्ष भी नहीं हुए थे कि राजनीति का विकृत चेहरा जनता के सामने आने लगा था 1 गांधीवादी विचारधारा की चादर ओढ़कर राजनेताओं ने लूटखसोट मचाना अपना राजनीतिक अधिकार समझ

लिया। झूठे भाषण देना, कोटे का परमिट बेचना, दीन-दुखियों की दशा पर घड़ियाली आँसू बहाना इत्यादि राजनेताओं के मौलिक कर्तव्य हो गए। धीरे-धीरे भ्रष्टाचार के दाग धोने और जनता को मूर्ख बनाने में यह धर्म उस्ताद होता चला गया। अब सभी प्रकार के पापों और अपराधों को धो देने वाला डिटर्जेंट राजनीति में खुलेआम उपलब्ध हो गया। इस प्रकार गांधीवाद की आड़ में राजनेताओं के भ्रष्टाचार फलते फूले गए और हाथ के हाथ उनके दाग भी धुलते गए। 1949 में लिखित 'मिनिस्टर मँगरू' शीर्षक कविता में कवि रेणु ने स्वतंत्र भारत के राजनेताओं-मंत्रियों की कारगुजारियों की जमकर पोल खोली—

सुना है जाँच होगी मामले की? पूछते हैं सब,/जरा गंभीर होकर मुँह बनाकर बुदबुदाता हूँ।
मुझे मालूम है कुछ गुर निराले दाग धोने के/अहिंसा लान्ड्री में रोज मैं कपड़े धुलाता हूँ।

रेणु का संबंध सोशलिस्ट पार्टी से बहुत निकट का रहा किंतु अपने मूल्यों से समझौता करना उनके बस की बात नहीं थी। 1952 तक उन्हें समझ आ गया था कि राजनीतिक दल चाहे कोई भी हों सबका मूल चरित्र लगभग एक जैसा ही होता है। रेणु की प्रकृति ही कुछ ऐसी थी कि उनकी प्रतिबद्धता किसी राजनीतिक दल से हो ही नहीं सकती थी। राजनीतिक दल में रहते हुए भी उनका एक ही मकसद था, और वह था किसानों-मजदूरों के अधिकारों के लिए लड़ना। उनकी राजनीति यहीं से शुरू और यहीं पर खत्म हो जाती थी। वे स्वयं को मनुष्य मात्र के प्रति प्रतिबद्ध मानते थे जिसका खुलासा करते हुए उन्होंने लिखा है—"मैं प्रतिबद्धता का केवल एक अर्थ समझता हूँ। आदमी के प्रति प्रतिबद्धताएँ बाकी सब बकवास है। अंततः झंडे और टोपी लेखक का विषय नहीं बन सकते, लेखक का विषय है मनुष्य।"[4] सत्ताधारी पार्टी के भीतर और बाहर राजनेताओं द्वारा किए जा रहे भ्रष्टाचार को उजागर करने में नागार्जुन की तरह रेणु ने भी अपने जनकवि होने का परिचय दिया है। स्वातंत्र्योत्तर मोहभंग और राजनीतिक भ्रष्टाचार को हिंदी कविता में साठ के दशक में जैसी जोरदार अभिव्यक्ति मिली उसकी बानगी रेणु के यहाँ पचास के दशक में ही देखने को मिल जाती है। रेणु के साहित्य में व्यंग्य बहुत धारदार शैली में लिखे गए हैं। उनके व्यंग्य की तीक्ष्ण धार कविताओं में भी उसी प्रभाव के साथ मौजूद है जैसी कथा साहित्य में है। सत्ताधारी दल की शरण में खद्दरधारियों के फलते-फूलते भ्रष्टाचार की परतों को एक-एक कर उघाड़ने के उद्देश्य से रेणु ने 1950 में 'मँगरू मियाँ के नए जोगीड़े' लिखे। यहाँ मँगरू पचास के दशक का वह कांग्रेसी राजनेता है जो अपने कारनामों से देश की भावी सत्ता और राजनीति का भविष्य तय कर रहा था। रेणु को राजनीति की गहरी समझ थी। देश की राजनीतिक नब्ज को उन्होंने बहुत निकट से पढ़ा-समझा था। इसीलिए उनके द्वारा लिखित जोगीड़े देश को खोखला कर रही रिश्वतखोरी, मुनाफाखोरी, कालाबाजारी इत्यादि विद्रूपताओं की न केवल कलई उतारते हैं बल्कि कवि की गहन राजनीतिक चेतना को सशक्त स्वरूप देते हैं—

एक रात में महल बनाया, दूसरे दिन फुलवारी।
तीसरी रात में मोटर मारा, जिनगी सुफल हमारी। जोगी जी स--र--र--र।
बाप हमारा पुलिस सिपाही, बेटा है पटवारी।
हाल साल में बना सुराजी, तीनों पुस्त सुधारी। जोगी जी स--र--र--र।
चच्चा मेरा कंट्रोल की चोर दुकान चलाता।
मैं लीडर हूँ खादीधारी, अंगुली कौन उठाता। जोगीजी स--र--र--र।
कांग्रेस की करो चाकरी योग्य सदस्य बनाओ।
परमपूज्य का ले परवाना, खुलकर मौज उड़ाओ। जोगीजी स--र--र--र।
खादी पहनो चाँदी काटो, रहे हाथ में झोली।
दिनदहाड़े करो डकैती, बोल सुदेशी बोली। जोगी जी स--र--र--र।

इस प्रकार अपराध और राजनीति के गठजोड़ की सबसे पहले खोलने वालों में रेणु की

कवि-भूमिका ऐतिहासिक है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् राजनीति का जो आपराधिक कर्मकाण्ड शुरू हुआ उसे अनावरित करने में वे तनिक भी पीछे नहीं रहे। उन्होंने इस प्रकार की कलुषित राजनीति को उजागर करने वाली अनेक कविताएँ लिखीं जिनका प्रौढ़ रूप रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर और धूमिल सरीखे कवियों में दिखाई पड़ता है। रेणु के देशकाल में सत्ता का दुरुपयोग राजनीति का मूल चरित्र बन चुका था। सत्ताधारी नेताओं के लिए जनता की कीमत सत्ता की सीढ़ी से अधिक कुछ भी नहीं रह गई। सत्ता और राजनीति के संरक्षण में सेठों-साहूकारों के खजानों में लगातार बढ़ोतरी तथा उसी अनुपात में श्रमिकों-मजदूरों में बढ़ रही भुखमरी रेणु को विचलित कर रही थी। वर्तमान व्यवस्था से त्रस्त होकर उन्होंने इसे रावणराज ठहराया और एक वैकल्पिक व्यवस्था की राह देखी। जिस रामराज्य का स्वप्न गांधी ने देखा था वह रेणु के सामने तो कभी आया नहीं, उलटे इस तंत्र में सत्य और अहिंसा की खूब दुर्दशा हुई। इसके बाद भी रेणु निराश नहीं थे। इन विषम परिस्थितियों में भी उन्हें विश्वास था कि यह अन्यायी रावणराज एक दिन अवश्य खत्म होगा। उन्हें उम्मीद थी कि जब रावण के जुल्मों का घड़ा भरेगा तो देश में रामराज्य का उदय भी अवश्य होगा। इसी विश्वास के साथ उन्होंने 1950 में भोजपुरी लोकगीत की पारंपरिक शैली में 'धमार फगुआ' लिखा--

फेरु होइहैं राम के राज।
अरे एतना जुलुम जनि करु मूढ़ रावन, फेरु होइहैं राम के राज।
जनता के नामें गद्दी चढ़ बैठे, झूठन के सरताज।
गांधी के सत्य अहिंसा रोए, रोवत राम के राज। अरे एतना जुलुम जनि------
भूखी नंगी जनता रोवे नेहरू रोपत पियाज।
जमींदरवन के पीठ ठोकि के, पोसें पटेल सरदार। अरे एतना जुलुम जनि------
गाँव-गाँव में जनमत निशिदिन नव कंगरेसिया चुहाड़
गाँव उजाड़ि के चोरवा बसावै चुगलन के दरबार। अरे एतना जुलुम जनि------

रेणु ने विभाजन की त्रासदी के साथ सांप्रदायिक दंगों की पीड़ा का भी बहुत निकट से अनुभव किया था। उनकी एक बहुत ही सशक्त कविता है 'अपने जिले की मिट्टी से', जिसे उन्होंने जनवरी 1948 में लिखी थी। इसमें देश के सौहार्द्र की चिंता उन्हें बार-बार स्वतंत्रता-संग्राम-सेनानियों के बलिदान की याद दिलाती है। उनके भीतर यह संकल्प है कि भले ही सारी सृष्टि तहस-नहस हो जाए देश की मिट्टी पर आँच नहीं आनी चाहिए। जन्मभूमि की मिट्टी और उसके मान को जीवित रखने की उनकी बेचैनी पूरी कविता में देखी जा सकती है। उन्हें यह विश्वास है कि वे शहीद ध्रुव कुंडू (एक 12 वर्षीय किशोर जो 9 अगस्त 1942 को पूर्णिया के जिला न्यायालय में तिरंगा लहराते हुए शहीद हो गया था), मजहरूल हक़ और सदाकत की शहादत को व्यर्थ नहीं जाने देंगे। शहीद मजहरूल हक़ देश के ऐसे जुझारू स्वतंत्रता-सेनानी थे जिनका उदय बिहार की ही पावन भूमि पर हुआ था। हिंदू-मुस्लिम-एकता और शिक्षा-सुधार के क्षेत्र में मजहरूल ने जो कार्य किए वे चिरस्मरणीय हैं। मजहरूल हक ने बिहार में चले होमरूल आंदोलन में भी एक अहम किरदार की भूमिका निभाई थी। रेणु इनके बहुत बड़े प्रशंसक हैं और वे इनके अधूरे कार्यों को अंज़ाम तक ले जाने की सौगंध लेते हैं। देश की फ़िरकापरस्त ताक़तों ने सांप्रदायिक दंगे फैलाकर अनेकों बार भारतमाता का आँचल तार-तार किया। इस कृत्य ने कवि रेणु की संवेदना को लहूलुहान कर दिया था। वे लिखते हैं--

कि मिट्टी मर गई उस दिन/मजहरूल और सदाकत के वतन की
कि जिस दिन मादरजात नंगी औरतों पर/हमल के बोझ ढोती औरतों पर
खिलौनों सी अबोनी बच्चियों पर/गली, बाजार, सड़कों, नुक्कड़ों पर
धरम का मुँह किया काला/धरम मजहबपरस्तों ने।

देश की इस विडंबना को देखकर रेणु आहत हैं I क्या कहा जाए, स्वयं को धर्म का रक्षक और मजहबपरस्त कहने वाले ही यहाँ सबसे बड़े अधर्मी हैं। अमानुषों द्वारा कीगई यह हिंसा रेणु जैसे संवेदनशील व्यक्ति कोघायल कर देने के लिए काफी थी। बावजूद इसके वे तनिक भी निराश नहीं हैं। आगे बढ़कर वे देश की मिट्टी और इंसानियत को अंतिम साँस तक जीवित रखने की सौगंध लेते हैं—

हिमालय की कसमं/मरती हुई इंसानियत को हम,
जिला रखेंगे मरते दम/कि तुम पर गिरने नहीं देंगे
लहू का एक भी कतरा/किसी असहाय बेबस का
किसी मासूम बच्चे का/बिलाघर-बार लोगों का
तिरंगे की कसम/रक्षा करेंगे हम/माँ-बहनों की पाक अस्मत
तुम्हारे जिस्म पर पड़ने नहीं देंगे/कदम नापाक उन फिरकापरस्तों का!

जन्मभूमि के प्रतिश्रद्धा और समर्पण का भाव फणीश्वर नाथ रेणु के काव्य का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। उनके भीतर देश को विविधस्तरीय पराधीनता से मुक्त कराने की एक अजीब सी तड़प थी। भारत के स्वाधीनता-आंदोलन से तो वे जुड़े ही थे, इसके साथ-साथ 1950 में नेपाली क्रांतिकारी आंदोलन में भी उन्होंने बढ़-चढ़कर भाग लिया। फिर चाहे वह विश्वविद्यालय की छात्र-संघर्ष समिति हो अथवा जयप्रकाश नारायण द्वारा चलाया गया संपूर्ण क्रांति का आंदोलन, सर्वत्र उनकी उपस्थिति अत्यंत जुझारू हो गई। 1971 का समय भारत-पाकिस्तान और बांग्लादेश के लिए एक ऐतिहासिक समय रहा जिसने पूरे भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास और भूगोल दोनों को बदलकर रख दिया। 1970 में पाकिस्तान की अन्यायी सत्ता के विरुद्ध पूर्वी पाकिस्तान में जबरदस्त विद्रोह हुआ जिसे कुचलने के लिए पाकिस्तान द्वारा सेना को लगा दिया गया। सेना के अत्याचार से त्रस्त पूर्वी पाकिस्तान की जनता भारत से शरण माँगने लगी I पूर्वी पाकिस्तान का संकट गहराता गया और 1971 के आखिर में भारत को उसकी मदद के लिए आगे आना पड़ा। बांग्लादेश से आए एक शरणार्थी जिसे रेणु ने 'सर्वहारा' कहा है, से संवाद की शैली में उन्होंने एक बहुत ही सशक्त कविता लिखी I इस कविता का शीर्षक था 'अग्रदूत' I उस शरणार्थी से संवाद करते हुए रेणु कहते हैं कि मनुष्य से भले ही धन-दौलत, घर-द्वार चाहे सब कुछ छिन जाए किंतु उसमें नैतिकता, विवेक तथा अपनी जन्मभूमि के प्रति प्रेम अवश्य बचा रहना चाहिए I कवि का मानना है कि जीवन में अन्याय का प्रतिवाद बहुत आवश्यक है I अन्याय के दिव्य प्रतिवाद से ही जीवन के अस्तित्व को बचाए रखा जा सकता है। जो प्रतिवाद करना जानता है, जिसका विवेक जीवित है, और जो देश की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति देने को उद्यत है वही जननी जन्मभूमि का सच्चा सपूत है I वह कभी पराजित नहीं हो सकता I सही अर्थों में वही अपनी मातृभूमि का 'अग्रदूत' भी है—

देश को 'माँ' के रूप में देखा है न? /तुम्हारा सब सुरक्षित है।
जीवितों की तरह जीना चाहा था न? /तब तुम्हें कौन मार सकता है?
अन्याय के/दिव्य प्रतिवाद से ही जीवन चलता है।

देशभक्ति के संदेश का संवहन करती उनकी एक और कविता है 'नदी मातृक देश के जलजीवी सपूत', जिसकी रचना उन्होंने 1971 में की थी। जन्मभूमि जब संकटकाल से गुजरती है तो उसे अपने सच्चे सपूतों की और अधिक आवश्यकता पड़ती है। रेणु की नजर में अपनी मातृभूमि के दुर्दिन में उसे छोड़कर जाने से बड़ा अपराध भला और क्या हो सकता है। वे सही अर्थों में भारत माँ के लायक बेटे हैं। माँ पर होने वाले किसी भी प्रकार के अन्याय कावे एक सच्चे सपूत की तरह प्रतिरोध करते हैं। भारतमाँ की पवित्रता को दागदार करने वालों के प्रति उनके मन में गहरा आक्रोश है। यहाँ वे माँ के आँचल की पवित्रता को सुरक्षित रखने का दृढ़ संकल्प करते हैं—

अंधकार घिर आए फिर भी हम लौट आएँगे।

माँ के हम लायक बेटे/अंधकार से भय पाएँगे?
माँ को छोड़ घोर दुर्दिन में/हम कहीं नहीं जा पाएँगे।
अपने पवित्र रक्त की उस नदी में/माँ को नहलाएँगे/पवित्र बनाएँगे,
हम बार-बार लौट आएँगे।

हिंदी की देशभक्ति की सुंदरतम कविताओं में से यह एक है, जिसकी चर्चा बहुत कम होती है। इस प्रकार की कई देशभक्ति की कविताएँ रेणु ने 1971 के आसपास लिखीं। स्वयं को मातृभूमि का एक लायक सपूत मानकर रेणु यहाँ माँ के आँचल की रक्षा हेतु एक पहरु, की सशक्त भूमिका में खड़े दिखाई पड़ते हैं। 'खून की कसम' कविता में वे व्यथित माँ के आँसू पोंछते हैं और उसकी आबरू को सुरक्षित रखने का आश्वासन देते हैं–

नयन से नीर बहा मत माँ! /अभी भी जीवित तेरे पूत।
किया है हमने अर्पित प्राण/तुम्हारा मान रहे मजबूत।

रेणु का कहना है कि कोई देश जब सत्य और अहिंसा की पैरवी करता है तो इसका अर्थ यह न लिया जाए कि वह कायर है। 'रूद्रशिव' कविता में वेदुश्मन की इस गुलतफ़हमी को दूरकर उसे देश की ताक़त के प्रति आगाह कर देना चाहते हैं। इतिहास साक्षी है कि जब-जब इस देश के समक्ष पशुबल ने सिर उठाया है उसे कुचल दिया गया है। यह देश रूद्र-शिव का देश है। रुद्र के तांडव पर थिरकने वाला यह विशाल देश अपनी ओर बुरी निगाह रखने वालों को क्षमा नहीं करता–

रूद्रशिव के नृत्य तांडव पर/थिरकते हैं हमारे पाँव।
कौन है यह जो हमारे साथ/करना चाहता है वैर?
आग से ये खेलने आए/नहीं ये जानते हैं/मूरखों के दल,
जिनका मात्र पशुबल ही रहा/सौ बार संबल।

रेणु ने छायावादी काव्य की तर्ज़ पर कुछ जागरण-गीत भी लिखे हैं I इन गीतों के माध्यम से वे भारतीयों के सुप्त मानस में एक नई झंकृति पैदा करना चाहते हैं। इसी तरह का एक गीत है 'जागो मन के सजग पथिक ओ!' ध्यान देने वाली बात यह है कि इसकी रचना उन्होंने 1956 के आज़ाद भारत में की थी। हिंदी में जितने भी जागरण-गीत लिखे गए हैं उनमें से अधिकांश स्वाधीनता-आंदोलन के दौर में लिखे गए हैं। किंतु चूँकि रेणु की दृष्टि में अभी देश पूरी तरह आज़ाद नहीं हुआ था अतः 1956 में भी इस प्रकार के गीतों की आवश्यकता उतनी ही बनी हुई थी। 'जागो मन के सजग पथिक' को पढ़ते हुए निराला की 'जागो फिर एक बार' कविता की याद आ जाती है। रेणु की इस कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

'जागो मन के सजग पथिक ओ! /अलस थकन के हारे-मारे,
कब से तुम्हें पुकार रहे हैं/गीत तुम्हारे इतने सारे!

रेणु की एक बहुत ही यादगार कविता है 'अपनी ज्वाला से ज्वलित आप जो जीवन'। इसकी ख़ास बात यह है कि इसे उन्होंने कवि दिनकर की अंत्येष्टि से लौटकर लिखी थी। दिनकर का जो प्रभाव रेणु के मन-मस्तिष्क पर पड़ा था उसे समझने के लिए इस कविता पर निगाह डालना बहुत आवश्यक है I 'अपने समय के सूर्य' के रूप में विख्यात 'दिनकर' की साहित्यिक त्रासदी भी कुछ कम नहीं थी I हिंदी-आलोचना-जगत ने उन्हें ठीक से पढ़े-समझे बिना ही उनके विषय में पूर्वाग्रहग्रस्त धारणा बना ली थी। इस अन्याय की पीड़ा दिनकर को आजीवन सालती रही। रेणु को भी दिनकर के साथ हुए इस साहित्यिक अन्याय का दुःख अवश्य रहा होगा I रेणु अपनी इस कविता की शुरुआत बड़े ही निराले एवं नाटकीय अंदाज में करते हैं–'हाँ, याद है! /उचक्के जब मंचों से गरज रहे थे, हमने उन्हें प्रणाम किया था।' यहाँ जुगाड़ करके मंच तक पहुँचे छुटभैये कवियों को उचक्का कहकर रेणु यह साबित करना चाहते

हैं कि वे बिना लागलपेट के सच उजागर करने वाले साहित्यकार हैं। उनके भीतर नीर-क्षीर का साहित्यिक विवेक भरपूर है। रेणु का यह निर्भीक साहित्यिक व्यक्तित्व ही आसानी से पहचान लेने में माहिर है। दिनकर जैसे साहित्यकार को यह न केवल प्रणाम करने को विवश है अपितु उन्हें हार पहनाकर उनका अभिनंदन भी करता है। दिनकर निस्संदेह रेणु के प्रेरणास्रोत कवि हैं, जिनमें राष्ट्र की सुप्त ज्वाला को धधकाने की अप्रतिम क्षमता है। रेणु की नज़र में देशवासियों को अग्निस्नान कराकर उन्हें खरा भारतीय बनाने की जो ताकत दिनकर में थी वह शायद किसी और में नहीं मिलेगी। रेणु 'कविवर विराट दिनकर' के कृतार्थ हैं जिनकी कविता ने पूरे देश को धारा के विरुद्ध चलने का साहस दिया है। वे दिनकर के इस उपकार को रेखांकित करते हुए लिखते हैं–

हमारी बुझी ज्वाला को धधकाकर/हमें अग्निस्नान कराकर
पापमुक्त खरा बनाया/एक विपल हम अवरुद्ध जले,
धारा ने रोकी राह/हम विरुद्ध चले
हमें झकझोर कर तुमने जगाया था
वह आया सचमुच एक हाथ में परशु/और दूसरे में कुश लेकर
किंतु...तुम ही रूठकर चले गए।

'रथ केघर-घर का नाद सुनो' 'आ रहा देवता, उसको पहचानो' तथा 'अंगार हार अरपो', 'समर शेष है' आदि दिनकर की असंख्य काव्य-पंक्तियों ने रेणु को उनका मुरीद बना लिया था। रेणु इस कविता में खेद व्यक्त करते हैं कि नवनिर्माण की चेतना को जागृत करने की जो मशाल दिनकर ने जलाई थी उसके प्रकाश की जगमगाहट वे नहीं देख सके। उनके द्वारा लगाए गए बाग के असंख्य 'अनल-कुसुम' अब सभी दिशाओं में अग्निवर्षा करने में सक्षम हो चुके हैं। रेणु को एक ओर जहाँ दिनकर के अवसान का शोक है तो दूसरी ओर इस बात का संतोष भी है कि अच्छा हुआ जो आज का समय देखने से पहले ही वे चले गए। सत्ता और समाज उन पर जिस तरह का दोषारोपण करता उसे वे सह नहीं पाते। रेणु इस बात से भलीभाँति अवगत हैं कि हिंदी और हिंदी से बाहर की दुनिया में दिनकर के विरोधियों की कोई कमी नहीं थी। इसीलिए रेणु को इस बात का भय था कि–

ऐसे में तुम आते/तो पता नहीं और क्या-क्या होता
पता नहीं, अब तक क्या क्या हो जाता/और तब तुमको फासिस्ट और चीनी
और अमेरिकी और देसी सेठों की दलाली/और देशद्रोह के जुर्म में/निश्चय ही देश से
बाहर निकाल दिया जाता।

रेणु इस कविता में दिनकर की दिवंगत आत्मा की शांति और मुक्ति हेतु प्रार्थना नहीं करना चाहते। इसकी जगह वे उनकी आत्मा के अपनी काया में प्रतिष्ठित होने की कामना व्यक्त करते हैं। यह दर्शाता है कि दिनकर के प्रति इससे अधिक श्रद्धा शायद ही किसी साहित्यकार के अंतस् में रही हो। रेणु मानते हैं कि अनय के प्रतिरोध की जितनी आग दिनकर के भीतर है उतनी कहीं और नहीं मिलेगी। उस आग को सदा के लिए बुझने से पहले वे अपने भीतर प्रज्ज्वलित करउसे जीवित रखना चाहते हैं। बड़ी से बड़ी शक्तियाँ भी यदि अन्याय और अनीति के साथ खड़ी हों तो रेणु भी दिनकर की तरह ही उन्हें ललकारने और उनसे मुठभेड़ करने का साहस संचित करना चाहते हैं। इसीलिए वे दिनकर की आत्मा को अपनी काया में स्थापित करने की कामना करते हैं-

हमें क्षमा करना कविवर विराट! /हम तुम्हारी आत्मा की शांति के बदले
उसको अपनी काया के एकांत और पवित्र/कोने में प्रतिष्ठित करने की कामना करते हैं
ताकि जहाँ कहीं भी अनय हो/उसे रोक सकें,/जो करें पाप शशि सूर्य भी/ उसे टोक सकें।

1974 में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में चल रहे आंदोलन के दौरान अन्य आंदोलनकारियों

के साथ रेणु भी सामूहिक अनशन पर बैठे थे। जब भी वे अन्याय के प्रतिरूद्ध आवाज़ उठाते, उन्हें दिनकर की काव्य-पंक्तियाँ सदैव याद आती थीं। उस आंदोलन में भी साहित्यिकों-बुद्धिजीवियों को झकझोरने के उद्देश्य से उन्होंने 'समर शेष' को 'समरक्षेत्र' कर दिया और गरजते हुए कहा था–

समरक्षेत्र है, नहीं पाप का भागी केवल ब्याध,
जो तटस्थ हैं, समय लिखेगा उनका भी अपराध।

रेणु ने अपनी बाल्य-किशोरावस्था की मित्रता पर भी एक कविता लिखी, जिसका शीर्षक है 'मेरा मीत सनीचर'। यह 1973 में 'नंदन' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। लरिकाईं में मित्र के साथ जी भरके जिए हुए क्षणों की याद दिलाती यह कविता रेणु के मन की सच्ची अभिव्यक्ति है। इसकी ओर संकेत करते हुएवे लिखते हैं–'पद्य नहीं यह, तुकबंदी भी नहीं, कथा सच्ची है,/कविता-जैसी लगे भले ही ठाठ गद्य का ही है।' रेणु की एक और कविता है 'शब्द कहेगा समीर' जो बांग्ला के सुप्रसिद्ध कलाकार, साहित्यकार एवं पत्रकार समीर रायचौधरी को संबोधित करके लिखी गई है। इनके अतिरिक्त 'समर्पण', 'पार्कर 51 के प्रति', 'कौन तुम वीणा बजाते', 'प्रथम शीत-स्पर्श', 'शब्द कहेगा', 'जित्तू बहरदार' और 'इमर्जेंसी' आदि उनकी उल्लेख.ीय कविताएँ हैं। इनमें रेणु की कविता के विविध संवेदनात्मक आयामों के दर्शन होते हैं।

जनव्यवहार की भाषा को ही रेणु अपनी सृजनशीलता के लिए अधिक उपयुक्त समझते थे। कथा-साहित्य की तरह ही आँचलिक-ग्रामीण शब्द उनकी काव्यभाषा के प्राणतत्त्व हैं जो उन्हें एक लोकवादी कवि के रूप में स्थापित करने में अहम भूमिका निभाते हैं। लोकसंगीत के विविध रंगों की छाप भी रेणु की काव्यभाषा को एक विशिष्ट पहचान देती है I उनका जोगीड़ा-लेखन इसका सबसे सशक्त उदाहरण है। इन जोगीड़ों में उन्होंने भ्रष्टाचार में आकंठ डूबे राजनेताओं के चेहरे से परत-दर-परत लगे नकाब को गीत-संगीत के द्वारा उतारने का सफल प्रयास किया है।

समग्रतः रेणु का काव्य-फलक कहीं से भी उन्नीस नहीं है। वे राजनीतिं और साहित्य में समान रूप से दखल रखने वाले एक गंभीर साहित्यकार हैं। उनकी जनपक्षधरता के जादुई प्रभाव से हिंदी कविता भी अछूती नहीं रही। कथा-साहित्य की तरह उनका काव्य-जगत भी लोकसंस्कृति और लोकजीवन के समग्र पक्षों को अपने भीतर समेटे हुए है। वे सही अर्थों में कविता को जीने वाले कवि हैं I

संदर्भ :

1. रेणु के साथ, संपादक-भारत यायावर, वाणी प्रकाशन, 2002, पृ. 18
2. रेणु स्मृति अंक, सारिका, 1979, पृ. 29
3. रेणु रचनावली-5, संपादक-भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, 1995, पृ. 381
4. वही, पृ. 432
5. रेणु से भेंट, संपादक-भारत यायावर, वाणी प्रकाशन, 1987, पृ. 113